ग्रामीण जीवन के चितेरे कथाकार शिवपूजन सहाय

रश्मि कुमारी*

आचार्य की योग्यताएँ और उपाधि से विभूषित शिवपूजन सहाय कुशल संपादक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। शिवपूजन सहाय बिहार के गौरव एवं हिन्दी साहित्य के प्रतिष्ठालब्ध साहित्यकार रहे हैं। उनकी प्रतिभा तो बहुआयामी है ही तथा विपुल लेखन द्वारा उन्होंने साहित्य की समृद्धि की है। सहाय जी को प्रेमचन्द एवं छायावादी कवियों के भाषा संशोधक की भूमिका निभाने का सुअवसर प्राप्त है। उनकी औपन्यासिक कृति देहाती दुनिया को हिन्दी का प्रथम आंचलिक उपन्यास कहलाने का श्रेय प्राप्त है। कहानी विधा की समृद्धि में भी उनका अमूल्य योगदान रहा। 'मुंडमाल' उनकी चर्चित कहानी है, जिसमें नारी के त्याग का अद्‌भुत आदर्श प्रस्तुत किया गया है। इनके संपादकीय आलेख, निबंधों की संख्या विपुल है, जो हमें विस्मित और विमुग्ध करता है।

कहानी विधा की समृद्धि में योगदान करने वाली इस बड़ी हस्ती के कथा साहित्यगत विशिष्टताओं को उद्‌घाटित करना हमारा उद्‌देश्य है। आचार्य जी ने अपनी उत्कृष्ट कृति 'देहाती दुनिया' में होती भाषा का प्रयोग हू–बहू किया है। इन्होंने गाँव के उन सभी बिन्दुओं को क्रमवार सजाया है, जिससे 'देहाती दुनिया' उपन्यास का नाम सार्थक होता है, चाहे वह एक ग्रामीण बालक का गंवारू वातावरण में लालन–पालन हो अथवा अशिक्षा का माहौल हो। उनका सजीव चित्रण शिवपूजन सहाय जी जैसे कथाकार से ही संभव है।

'देहाती दुनिया' का पहला अध्याय माता का आँचल है, जो कि यथा नाम तथा गुण से परिपूर्ण है। इस अध्याय की शुरुआत होती है–

''जहाँ लड़कों का संग, तहाँ बाजे मृदंग,
जहाँ बुड्‌ढों का संग, तहाँ खरचे का तंग।''[1]

प्रस्तुत उक्ति के द्वारा कथाकार ने सामान्य तौर पर अपनी अगली पीढ़ी यानि कि अपनी संतान की सारी आवश्यकताओं, सारी खुशियों का ख्याल रखा है।

***शोध छात्रा, हिन्दी विभाग बी.एन. एम.यू., मधेपुरा (बिहार)**

इसके साथ ही अपनी सारी इच्छाओं का दमन करते हुए खुद को अभाव में जीते हुए जिंदगी के हर लम्हा को व्यतीत करता है। जहाँ बच्चे जिंदगी के प्रत्येक पल की आनंदमय ढंग से जीता है, वहीं प्रौढ़ अपने अभावों का पिटारा लिए व्यथित रूप से जीवनयापन करते हैं। माता का आंचल का अर्थ ही होता है छाँव भरा आसमान। जिसमें न सूर्य की तपिस हो और ना ही पूष भी ठिठुरती ठंड। इसमें तो बस धूप में छाँव और ठिठुरती ठंड में भी अलाव की गरमाहट प्राप्त होती है। किसी भी तरह की मुसीबतों को परे रखकर माता का यह आँचल ही है जो हमें शकुन भरा पल एवं चैन की नींद प्रदान करती है। गाँव की माताएँ अपने बच्चों को गोद में बिठाकर प्यारे भरे हाथों से खिलाना पसंद करती हैं, न कि आगे में चुपचाप खाना रखकर झुंझलाई सी खाने के लिए डाँटती हैं। जबकि शहरी माताएँ तो बच्चों को आया के भरोसे ही छोड़ देती हैं। वात्सल्य रस का सही मायने में रसास्वादन तो ग्रामीण माताएँ ही कर पाती हैं। वह अपने हाथों से बच्चों को खिलाकर ऐसे तृप्त होती हैं जैसे कि उसने स्वयं छप्पन भोग का रसास्वादन किया हो। वे अपने बच्चों के लिए उक्ति कहती हैं–

''जब खाएगा बड़े–बड़े कौर,
तब पाएगा दुनियाँ में ठौर।''

देखिए मैं खिलाती हूँ। मरदए क्या जाने कि बच्चों को कैसे खिलाना चाहिए और महतारी के हाथ से खाने पर बच्चों का पेट भी भरता है।''[2]

सहाय जी ने 'बुधिया का भाग्य' शीर्षक कथा द्वारा समाज में व्याप्त कुरीतियों एवं सामंतवादी प्रथा का सजीव चित्र प्रस्तुत किया है। सामंतों द्वारा बेबस, लाचार, कमजोर वर्ग की लड़की को अनैतिक ढंग से अपने भोग, विलास का साधन मात्र बनाकर रखा जाता है। दलित चमारिन बुधिया को उसकी भावना को कुचलते हुए अमर्यादित ढंग से 'रखैली' बनाकर अपने पास रख लेता है। बाबू रामटहल सिंह बुधिया से मात्र दैहिक सुख चाहता है, उसे अपनी सहधर्मिनी नहीं बनाता। बुधिया बाबू रामटहल सिंह से घृणा करने लगती है। उसके नफ़रत की पराकाष्ठा इतना बढ़ गई है कि वह उसकी हत्या तक कर देने की मंशा पाल बैठती है। परन्तु एक अबला, निर्धन, दो जून की रोटी के लिए तरसने वाली लड़की के लिए यह नामुकिन है। यहाँ समाज की विद्रूप मानसिकता का मर्मस्पर्शी दृश्य उद्‌घाटित होता है। यहाँ हमें यह सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि– क्या खुशी के क्षण, अपनी इच्छानुसार खाने–पहनने अथवा जीवन व्यतीत करने का हक सिर्फ कुलीन परिवारों की बहू–बेटियों को है? दलित वर्ग की बहू–बेटियों का कोई

मनोभाव नहीं? क्या समाज में सिर ऊँचा कर चलने का अधिकार इस अनपढ़, गँवार, दीनहीन परिवार की बेटियों का नहीं? यह ज्वलंत सवाल कथानक के मन को भी जरूर मथता होगा, तभी तो उसने इस कटु सत्य को इतने सहज और मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। 'देहाती दुनिया' कीन्हीं एक दूसरी दलित पात्र तरुणी सुनिया के हृदय की छटपटाहट को इस पंक्ति से सहज रूप में समझा जा सकता है– ''मेरे दिन अब न बहुरेंगें।'' भगवान ने मेरी किस्मत में न जाने क्या लिखा है। यही अभागा मेरी किस्मत में कोयला से लिखा गया था सो आकर, आखिर सिर पर पत्थर पड़ा ही। आँगन में आता है कि झाड़ू लेकर मुँह में मार दूँ। मुझे अपनी नतनी के बराबर देखकर भी तनिक नहीं लखाता। पिल्लू पड़ जानेय। मरने पर उसे कफन न जुरे।''[3]

शिवपूजन सहाय द्वारा उल्लिखित उपरोक्त पंक्ति पाठकों पर अपना प्रभाव डालने में पूर्ण तथा सक्षम है। उपरोक्त पंक्तियों में बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्र उकेरा गया है। एक विलक्षण प्रतिभा एवं व्यक्तित्व के प्रतीक थे आचार्य शिवपूजन सहाय। प्रद्मभूषण से विभूषित आचार्य जी का समस्त जीवन हिन्दी की सेवा में बीता। व्यक्तिगत चरित्र उनके लिए उतना ही महत्वपूर्ण था, जितना की सार्वजनिक चरित्र। इन्होंने साहित्य ही नहीं, साहित्यिकों का भी निर्माण किया। हिन्दी भाषा को मानक स्वरूप में स्थापित करने में कर्मठ पत्रकार साहित्य सेवी एवं राष्ट्रभाषा के उन्नायक आचार्य शिवपूजन सहाय का योगदान अविस्मरणीय है।

संदर्भ सूची

1. देहाती दुनिया चौथी आवृति, (शिवपूजन सहाय), पृ॰ 11
2. माता का आँचल (प्रथम अध्याय, देहाती दुनिया), पृ॰ 12
3. देहाती दुनिया (दारोगा का चोर महल अध्याय), शिवपूजन सहाय, पृ॰ 61
4. साप्ताहिक हिन्दुस्तान–1963 ई॰
5. साहित्यिक संदेश जनवरी–फरवरी– 1958 ई॰
6. साहित्यिक निबंध– डॉ॰ कृष्णदेव झारी, पृ॰ 237
7. ज्योत्सना शिवपूजन स्मृति अंक– 1963 ई॰

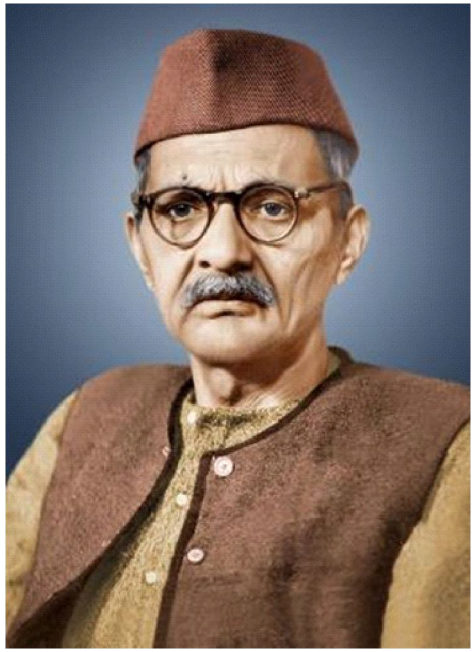

कथाकार शिवपूजन सहाय